શ્રી આત્માનંદ જૈન ગ્રથમાળા નબર

श्री विमलाचार्यविरचित—

श्री संवेगद्रुमकन्दली.

(मूल सहीत भाषांतर)



प्रसिद्ध कर्त्ता—

श्री जैन आत्मानंद सभा—भावनगर



वीर स २४६० आत्म स ३८ विक्रम स १९९०

किंमत चार आना



ज्ञानामृत महोदधिमाथी मंथन करी पूज्याराध्य महाराज श्री भव्य प्राणीओनी मुक्ति माटे वैराग्य-संवेगमार्गनी प्रथम पंक्तीमात उपदेशद्वारा जणावी छे मोक्ष पामवा माटे संवेग मार्ग तद्दन परम अने मुख्य औषध छे के जेना आदरथी दरेक प्राणीओ अनादिकाळथी भोगवता दुःखो दूर करी शके छे तेटलुं ज नहिं परंतु विनाशी सुखमांथी अविनाशी अनंत अने अखंड सुख पामे छे

आ शाश्वत सुखनी प्राप्ति माटे संवेगगुण अनुपम साधन होवाथी आ ग्रंथनुं सार्थक " संवेगद्रुम कंदली " नाम ग्रंथ कर्त्ता महाराजे आपेल छे जैनेतर ग्रंथोमां गीता वैराग्यशतक वगेरे ग्रंथो के जेनी रचना जोई तेना वाचको शांत अने सुखी बने छे तेम संसारमां आधि, व्याधि, अने उपाधियो वडे बळी रहेल आत्माओने अपूर्व शांति केम प्राप्त थाय ? तेमज तेवा आत्माओनुं परम श्रेय केम थाय ते हेतु ध्यानमां राखी श्रीमान् विमलाचार्य महाराजे आ ग्रंथनी पचास श्लोकमां (संस्कृत भाषामां) सुंदर अने अलौकिक आ रचना करी छे

मनने वश करवा माटे जेम श्रीआनंदघनजी महाराजे श्री कुंथुनाथ भगवानना स्तवनमां जे जणावेल छे, ते मनने आ ग्रंथकर्त्ता महात्माए मदोन्मत हाथी जणावी तेने वैद-वचने करवा संवेगरूपी कोठडीमां पुरवा माटे आ पचास श्लोक प्रमाण हुं आ ग्रंथ रचु छुं तेम शरुआतमां जणावेल छे

ग्रंथनी शैली ते भाषाना अभ्यासको माटे सुंदर, पद्य रचना सरल अने विद्वत्तापूर्ण छे जे मनुष्य आ ग्रंथ मनन पूर्वक वांचे, विचारे-मनन करे, सांभळे तेनु हृदय शांत थतां संवेगमार्गनो आदर करवा ते तत्पर प्रयत्नवान बने छे जेथी बाळजीवो तेनो विशेष लाभ लइ शके ते माटे प्रातःस्मरणीय कृपालु **श्रीहंसविजयजी** महाराजना दर्शन निमित्ते आ सभाना सेक्रेटरीनुं गइ सालमां पाटण जवु थतां तेमने तेओश्रीए आ सभा तरफथी आ ग्रन्थ मूळ तथा भाषांतर साथे प्रसिद्ध करवा आज्ञा करी, जेथी आजे आ ग्रंथ प्रसिद्ध थाय छे केटलाक अनिवार्य कारणोने लीधे मुनिराजश्री हंसविजयजी महाराजनी हैयातिमां आ ग्रंथ प्रकट करी शक्या नथी ते माटे अमो दिलगीर छीए आवो अध्यात्म-संवेगनो आ अपूर्व ग्रंथ दरेक घर लाइब्रेरीमां अने दरेक मनुष्य पासे निरंतर अभ्यासमां होवो जोइए, तेटलुंज नहिं परंतु जैनशाळाओमां बाळक बालिकाओने मूळ श्लोको कठाग्र करावी तेनुं अपूर्व रहस्य समजाववुं जोइए

श्रीमान् हंसविजयजी महाराज इच्छता—जणावता हता

के आ ग्रंथ देश देशनी दरेक भाषामां प्रकट थई जाय। अमोने आ हकीकत योग्य जणाय छे जेथी आ सभाने आर्थिक सहाय मळेथी हिंदी अने इंग्लीश भाषामां तेना अवतरणो करावी बहोळो प्रचार करवानो अभिलाषा छे

आ ग्रंथमां छपामणी मेघजीभाई थोभणचंदे आपेल आर्थिक मदद माटे आभार मानवामां आवे छे

आ सभाना मानवंता पेट्रन साहेब बाबु साहेब बहादूर सिंहजी सिंघी साहेबनी सूचनानुसार आ प्रमाणे हवे पछी लाइफ मेम्बरोने अपाता भेटना पुस्तको साथे दरेक वखते एक ग्रंथ शास्त्री भाषामां सौ कोई लाभ लई शके ते माटे प्रकट थशे

स्वर्गवासी महात्मा हंसविजयजी महाराज तथा तेओश्रीना सुशिष्य पन्यासजी श्री संपतविजयजी महाराजनी आ सभा उपर पूर्ण कृपाने लईने आ सभा तेओश्रीनी आभारी छे

श्रीसिद्धक्षेत्र पालीताणा
वीर संवत् २४६०
आत्मसंवत् ३८
विक्रम संवत् १९९०
अक्षय तृतीया

गांधी वल्लभदास त्रिभुवनदास



કપાસી મેઘજીભાઈ ઝવેરચંદ પાલીતાણાવાળા
ભાવનગર

श्रीविमलाचार्यविरचित—

संवेगद्रुमकन्दली.

(गुर्जर भाषांतर.)

मंगलाचरण

दूरीभूतमनोऽर्तिभिः प्रविदलन्मोहान्धकारोदयै-
र्नासाग्रनिवेशितेक्षणयुगैर्यद्वीक्ष्यते योगिभिः ।
तत्पारे परतेजसां च तमसां प्राप्तप्रतिष्ठं पर-
दुर्लक्ष्यं परमात्मसंज्ञममलं ज्योतिर्जयत्यक्षयम् ॥१॥

जेमणे संसारनी पीडाओ दूर करी छे अने मोह-रूपी अंधकारना उदयनो नाश कर्यो छे एवा योगीपुरुषो पोतानी नासिकाना अग्रभाग उपर बने नेत्रो राखी जेनुं निरीक्षण करे छे अने जे परम तेज तथा अंधकारनी पार प्रतिष्ठा पामी रहेलुं छे एवुं दुर्लक्ष्य परमात्मारूप निर्मल अने अक्षय ज्योति पामे छे ॥ १ ॥

---

१ परमात्मसंज्ञ इत्यपि ।

ग्रथ प्रयोजन.



रागद्वेषमदाभिमानमदनक्रोधादिभिर्वैरिभि-
र्व्याप्तं सर्वमिदं चराचरमिति प्रायो जगज्जित्वरैः ।
इत्यन्तःकरणप्रमत्तकरिणः मोल्लुण्ठमुच्छिन्दतो
धर्मारामममसौ नियन्त्रणकुटी पञ्चाशदारभ्यते ॥२॥

प्रायेकरीने राग, द्वेष, मद, अभिमान, काम अने क्रोध विगेरे विजयी वैरीओथी आ सर्व चराचर जगत् व्याप्त थयेलु छे, तेथी अत करणरूपी मदोन्मत्त हाथी धर्मरूपी उद्यानने महान् उच्छेद करवाने प्रवर्त्यो छे ते हाथीने कबजे राखवाने माटे आ पचाश श्लोकरूपी मजबूत कोटडीनो आरभ करवामा आवे छे[1] ॥२॥

---

१ जेम कोइ उन्मत्त हाथीने कबजे करी मजबूत मोटी कोटडीमा पूरवामा आवे छे तेम आ पचाश श्लोकवाळो ग्रथ जे वाचे अथवा सामळे तो तेनु उन्मत्त हृदय शात थइ जाय छे–मन कबजामां आवी जाय छे

प्राप्त थयेली शुद्ध सामग्रीने निष्फल करनारा हृदयने उपालम्भपूर्वक धर्मनो आदर करवानो उपदेश

चेत' किमु वृथालजालगुपिले यद्वा भवेऽस्मिन् रतिं
सामग्रीं निफलीकरोषि सुचिराल्लब्धा विशुद्धामिमाम्।
क्षान्तिं मार्दवमार्जवं च शुचितां मुक्तिं तपः संयमं
सत्यं निर्धनतामभैथुनमिमं धर्मं कुरुष्वादरात् ॥३॥

हे चित्त ! वृथा आळपाळथी गुथाएला आ संसारमां प्रीति धारीने लांबे काळे प्राप्त थयेली शुद्ध सामग्रीने तुं शामाटे निष्फल करे छे ? क्षमा, कोमळता, सरळता, पवित्रता, मुक्ति, तपस्या, संयम, सत्य, अपरिग्रह अने ब्रह्मचर्यरूप दश प्रकार धर्मनुं तुं सेवन कर ॥ ३ ॥

१ प्रथम क्षमाथी क्रोधने जीतवानो उपदेश

येनान्धीकृतमानसो न मनुते प्रायः कुलीनोऽपि सन्
कृत्याकृत्यविवेकमेत्यधमवल्लोके परित्याज्यताम् ।
धर्मं नो गणयत्यतिप्रियमपि द्वेष्टि स्वयं खिद्यते
स क्षान्तिक्षुरिकाधरेण हृदय क्रोधो विजेयस्त्वया ॥४॥

हे हृदय ! जे माणसनुं मन क्रोधथी अंध थई जाय छे ते माणस कुलवान् होय तो पण कृत्य अने अकृत्यनो विवेक जाणी शकतो नथी, ते नीच माणसनी जेम लोकमां त्याग करवा योग्य थई जाय छे, ते धर्मने गणतो नथी, ते पोताना प्रियजननो पण द्वेष करे छे अने पोते पण खेद पामे छे, तेवा नठारा क्रोधने तारे क्षमारूपी छरीने धारण करी जीती लेवो जोइए ॥४॥

क्रोधने शामाटे स्थान आपवु जोइए ?

आत्मानं परितापयत्यनुदिनं जन्मान्तरेष्वप्यलं
दत्ते वैरपरम्परां परिजनस्योद्वेगमापादयेत् ।
धत्ते सद्गतिमार्गरोधनविधौ गन्धद्विपत्वं तत
क्रोधस्येत्थमरे! रिपो क्षणमपि स्थानं कथं दीयते॥५

अरे हृदय! जे क्रोधरूपी शत्रु क्षणे क्षणे आत्मा
परिताप करे छे, जे जन्मांतरमां पण परंपराए पूर्ण वै
कराये छे, जे परिजन–परिवारने उद्वेग करावे छे अ
जे सद्गतिना मार्गनो निरोध करवामां तो मदोन्म
हाथीना जेवो बने छे तेना क्रोधरूपी शत्रुने तुं शाम
क्षणवार पण स्थान आपे छे ? ॥ ५ ॥

१ अनुक्षण । २ मत्तगजत्व ।

क्षमाथी क्रोधरूपी शत्रुने बळात्कारे विलग्वो ज करी नाखवो जोइए

एष्यद्दुर्गति पातभीत इव य क्रूरना स्वय कम्पते
यद्भीतैरिव मासशोणितरसैः कायः परित्यज्यते ।
खानिर्दुःखगणस्य निर्मलगुणम्लान्येकहेतुर्मन
क्षान्त्या हन्त निलक्षता निजरिपु क्रोधो हठान्नीयताम्‌६।

हे मन ! जे क्रोधने लइने माणस भविष्यमा थनारी दुर्गतिमा पडवाथी व्हीतो होय तेम कपी उठे छे, जेना भयथी जाणे व्हीता होय तेम मास तथा रुधिरना रसो शरीरने छोडी दे छे, जे दु खना समूहनी खाणरूप छे अने जे निर्मल गुणोने ग्लानि आपवामा मुख्य कारणरूप छे, तेवा तारा क्रोधरूपी शत्रुने तु क्षमा गुणथी बळात्कारे विलग्वो बनावी दे[1] ॥ ६ ॥

---

१ क्रोधी माणस क्रोधना आवशथी धूजे छे तेना शरीरमा मास तथा रुधिर शोषाइ जाय छे ते दु ख पामे छे अने तेना सारा गुणो ढकाइ जाय छे, तेवो भावार्थ आ श्लोकमां उपजावेलो छे ।

२ मार्दव-कोमळताना गुण विषे.

मानने छोडी कोमळता मेळववा अभ्यास करवो जोइए

भ्राम्यत्यूर्ध्वमुख क्षमो नमयितु पूज्येऽपि नो कन्धरा-
मन्त क्षिप्तकुशीलताशठतनु प्राणी यदभ्यासित[1] ।
त मान विपदा निधानमयशोराशेर्निदान सदा
मुक्त्वा मार्दवमादरेण महता चेत ! समभ्यस्यताम् ॥७॥

हे चित्त ! जो मानना अभ्यासथी माणसनु शरीर अत करणमा खोसेली कुशीलता-लोढानी फोशथी जकडाइ जाय छे, तेथी ते माणस पोतानु मुख उचु राखी चाले छे अने पूज्यपुरुषनी तरफ पोतानी ग्रीवा नमाववाने पण समर्थ थतो नथी, तेवा विपत्तिओना भडाररूप अने अपकीर्तिना कारणरूप मानने छोडी दइ मोटा आदरवड तारे मार्दव-कोमळता मेळववा माटे ज अभ्यास करवो ॥ ७ ॥

---

१ कुशील(शोभ)रूप मन अथवा कुशीलता दुशीलता।

२ अंतःकरणमां रहेल कुशीलता रूपी कुशाल्य एवो पण अर्थ थइ शके

३ सरळताना गुण विषे.

मायाने दूर करवा सरळतानो अभ्यास करवो जोइए.

विश्वस्तानपि वञ्चयत्यनुदिनं मित्रे गुरौ बन्धुषु
प्रायेण च्छलमीक्षते क्षणमपि द्रोहं विना दुःस्थितः ।
जागर्त्ति स्वपिति प्रतारणधिया या सेवयन्निस्त्रपो
मायाया॰ प्रतिकूलमार्जवमरे तस्याः समासेव्यताम् ।८।

हे चित्त ! जे मायाने सेवनारो पुरुष निर्लज्ज थइने प्रतिदिवस विश्वासी माणसोने छेतरे छे, प्राये करीने पोताना मित्र, गुरु अने बंधुओमां पण छळनी दृष्टिए जुवे छे, क्षणवार पण द्रोह विना रही शकतो नथी अने हमेशा बीजाने छेतरवानी बुद्धि राखी जागे छे अने सुवे छे अर्थात् जागता अने सुता पण बीजाओने छेतरवाना ज विचारो कर्या करे छे, तेवी मायाने प्रतिकूल एवी सरळता राखवी जोइए तेथी तुं तेनुं सेवन कर ॥ ८ ॥

लोभथी मुक्त रहेवु जोइए

तृष्णावल्लिरियं नवैव निधिनाप्येतेन निष्पादिता–
छेत्तु प्रक्रमिता किमप्यतितरा या केवलं वर्द्धते ।
तल्लोभस्य निजृंभितं स सकलक्लेशप्रसूतिस्ततो–
मुक्तिर्मुक्तिवधूसमागमविधौ दूती समाराध्यताम् ॥९॥

हे चित्त[1] जे लोभ–तृष्णारूपी एक नवी जातनी वेल विधिए उत्पन्न करेल छे, के जे वेलनो उच्छेद करवा जता उलटी ते वधारे ने वधारे वधती जाय छे, ते लोभनु ज वधतु जतु स्वरूप छे, अने वळी जे लोभ सर्व जातना क्लेशोने उत्पन्न करनारो छे, तेवा लोभ-मांथी जे मुक्ति (छुटवु) ते मुक्ति (मोक्ष)रूपी वधूनो समागम कराववामा दूतीरूप छे, तेथी तु तेनु आराधन कर ॥ ९ ॥

---

1 प्रारब्धा ।

४ शुचिता-पवित्रताना गुण विषे

बाह्य शौच नहीं करता अंतःशौच करवु जोइए

तीर्थे तीर्थमटे परिश्रमसि किं खेदाय दत्वा मनः ?
स्नानाद्बाह्यमलोऽप्यपैति न पुनर्मानानुबन्ध॰ क्षयम् ।
आत्मा चैष कलङ्कितोऽन्तरमलैः शुद्धिं ततः किं भजे-
च्छौचं तत्तदहो कुरुष्व कुरुते येषां समुच्छेदनम् ॥१०॥

हे भव्य ! तु तारा हृदयने खेद आपी सारो तीर्थे शामाटे भमे छे ? तीर्थमा स्नान करवाथी बाह्य मळनो क्षय थशे पण भाव-मान-अंतरना मळनो क्षय थशे नहीं अंतरना मळोथी कलंकित थयेलो तारो आत्मा शी रीते शुद्धिने पामशे ? तेथी जे रीते अंतरना मळो उच्छेद पामे तेवु तु शौच कर ॥ १० ॥

१ भावानुबन्ध भावमल

८ तपना गुण विषे

दुःखोना अगाध समुद्रने तारनारु तप करवु जोइए

निस्तीर्णा बहवस्तरन्ति बहवो भव्यास्तरिष्यन्त्यपि
क्लेशाम्भोधिमगाधमप्यतितरां चीर्णेन येन ध्रुवम् ।
बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नमचिरात्संसारकारागृह-
क्रूरद्वारकपाटभेदि तदरे स्फीतं तपस्तप्यताम् ॥११॥

६ संयमना गुण विषे

मोक्षपुरीने मार्गे जवा माटे संयमरूपी कवच धारण करवुं जोइए

आत्मन्निच्छसि हन्त शाश्वतपुरीमार्गे विहर्तुं यदि
भ्रातः ! संयमवर्मणा कुरु तदा रक्षाविधिं सर्वतः ।
नो चेदिन्द्रियतस्करैस्तत्र हठात्तीक्ष्णाग्रभूरिस्फुर-
चिन्ताभल्लिशतैर्विभिद्य हृदयं ग्राह्यो विवेको मणिः ॥१२॥

अरे भ्राता आत्मन्[1] मोक्षपुरीने मार्गे विहार करवानी जो तारी इच्छा होय तो तु संयमरूपी कवच धारण करीने सर्व तरफथी तारी रक्षा करजे जो तु ते रक्षा नहीं करे तो इंद्रियरूपी तस्करो तीक्ष्ण अग्र-भाला फरकता चिंतारूपी सेंकडो भालाओथी तारा हृदयने तोडी तेमा रहेला विवेकरूपी मणिने बलात्कारे ग्रहण करी लेशे ॥ १२ ॥

---

१ मोक्षपुरीमार्ग ।

७ सत्यना गुण विषे

नठारा असत्य वचनने छोडी प्रतिज्ञाथी सत्य बोलवुं जोइए

पुण्यानां प्रकटप्रयाणपटह प्रस्थानमन्मङ्गल
माहात्म्यस्य यदत्र मन्त्र इव यत्कीर्त्तेः समुच्चाटने ।
आत्मापि स्वयमेव लज्जत इव प्रायो यदुच्चारणे
तन्मुञ्चानृतमादृत कुरु सखे! सत्येन सत्य श्रुते ॥१३॥

हे सखे ! जे असत्य वचन पुण्योनो प्रगट रीते प्रयास करावयामां पटह (ढोल) रूप छे, जे महात्म्यपणाने प्रयाण करवानुं उत्तम मंगलरूप छे, जे कीर्त्तिने उच्चाटन करवाना मंत्ररूप छे, अने जेनो उच्चार करवामां प्रायेकरी आत्मा पोते पण शरमातो होय तेम लागे छे, तेवा असत्य वचनने छोडी दे अने प्रतिज्ञाथी श्रुतमां सत्य वचननुं आदरपूर्वक ग्रहण कर ॥ १३ ॥

---

१ प्रतिज्ञया २ एटले जेना वडे बोलवाथी पुण्य चाल्युं जाय [illegible] अने माहात्म्य घणी जाय छे

८ अपरिग्रहना गुण विषे

सर्वत्र समदृष्टि थइ निष्किंचन थवु जोइए.

कः कस्येह न को न कस्य किमिह स्वस्याथ किं चापर-
स्येत्थ चित्त ! भवस्वरूपमखिलं सञ्चिन्त्य मायामयम् ।
स्वर्णं लेष्टुमथो प्रियं रिपुमथो वेश्मान्यरण्यान्यथो
स्त्रैणानीह तृणान्यथो समदृशा पश्यन् भवाकिञ्चनः ॥१४॥

हे चेतन ! 'कोनु कोण छे ?' कोइ 'कोइनु नथी' अने 'आपणु शु छे अने बीजानु शु छे ?' एवी रीते आ बधु मायामय संसारनु स्वरूप चिंतवी स्वर्ण अने माटीनु ढेफु, प्रियमित्रो अने शत्रुओ, घरो अने जंगलो, स्त्रीओ अने तृण ए सर्वे समदृष्टिथी जोइ तु निष्किंचन–परिग्रह वगरनो था ॥ १४ ॥

---

१ मृत्पिण्डम् । २ स्त्रीसमूहा ।

९ ब्रह्मचर्यना गुण विषे

आ संसाररूपी लताने छेदनारा निर्मल ब्रह्मचर्यने सेववुं जोइए

यन्मुक्तः किल चक्षुषेव रहितः प्राणी न विभ्राजते
सर्वाङ्गं सुभगोऽपि हि व्रतविधेर्धर्मस्य यज्जीवितम् ।
धीराणामपि देवदानवनृणां यत्सर्वथा दुष्करं
तत्संसारलतालवित्रममलं रे ब्रह्मचर्यं भज ॥ १५ ॥

हे चेतन ! ब्रह्मचर्यथी रहित एवो पुरुष सर्व अंगे सुंदर एवो प्राणी जेम नेत्र वगरनो शोभे नहीं तेम शोभतो नथी जे ब्रह्मचर्य व्रतविधिना धर्मनुं जीवनरूप छे, अने जे ब्रह्मचर्य धीर एवा पण देव, दानव अने मनुष्योने सर्वथा दुष्कर छे, तेवा संसाररूपी लताने छेदनारा[1] निर्मल ब्रह्मचर्यनुं तुं सेवन कर ॥ १५ ॥

१ संसाररूपलताविच्छेदक

१० देहनी अनित्यता विषे

आ देह कदि पण परलोकमा साथे आववानो नथी.

दिक्षु भ्राम्यसि यासि पारमुदधेर्दैन्यं समालम्बसे
सेवामिच्छसि गच्छसि प्रतिगृहं बद्धाञ्जलिर्याचसे ।
किं किं नास्य कृते करोषि वपुषो रे जीव ! लोकान्तर-
प्रस्थाने तु पदान्तरेऽपि भवता सार्द्धं न तद्यास्यति ॥१६॥

हे जीव ! आ शरीरने अर्थे तु शु शु नथी करतो ? तु तेने माटे दिशाओमा भटके छे, समुद्र पार जाय छे, दीनता करे छे, सेवा (नोकरी) करवानी इच्छा राखे छे, घेर घेर भटके छे अने ने हाथ जोडीने मागे छे, पण ज्यारे तु परलोकमा प्रयाण करीश त्यारे ते शरीर तारी साथे एक पगलु पण आववानु नथी ॥ १६ ॥

११ कर्मनी शक्ति विषे

पोताना कर्मोथी जकड बधाएलो जीव संवेग रूपी उंचा वृक्ष उपर चडी शकतो नथी

लोकेभ्य शृणुम' प्रतिक्षणमिमा ससारनि सारता
नि सन्देहमथात्मनाप्यहरह प्रत्यक्षमीक्षामहे ।
किन्त्वेकान्तनितान्तसौख्यफलद सवेगवृक्षद्रुमे
नारोढु क्षमते दृढ निगडितो जीव स्वकै कर्मभि ॥१७

'आ ससार नि सार छे' एवु अमे वारवार लोको पासेथी सामळीए छीए अने 'ते नि सदेह छे' एवु अमे अमारी जाते हमेशा प्रत्यक्षपणे जोइए छीए, ते छता पोताना कर्मोथी जकड बधाएलो जीव एकातपणे मोक्षसुखना फळने आपनारा सवेगरूपी उचा वृक्ष उपर चडी शकतो नथी ॥ १७ ॥

---

१ दृढ दृढ ।

१२ कामासक्ति त्याग करवा विषे.

किंपाकना फलनी जेम विरस एवा कामने विषे
आसक्ति छोडी देवी जोइए

रे रे मानस ! निन्दितेषु विबुधैः कामेषु बध्नाग्रहं
किं किम्पाकफलेष्विवान्तविरसेष्वेतेषु धत्से रतिम् ? ।
संहृत्याशु बहिर्भ्रमं कुरु स्थिमप्यालोच्य तत्त्वो पुन-
र्येनास्मिन् जगति प्रकामकटुभिः कष्टैरुपद्रूयसे ॥१८॥

अरे मन ! विद्वानोए निंदेला अने किंपाकना झेरी वृक्षनी जेम परिणामे विरस एवा काम–विषयोमा आग्रह बांधीने तुं शामाटे प्रीति करे छे ? अने बहार्नो भ्रम सत्वर छोडी दइ काइ पण विचारीने काम कर के जेथी आ जगतमा अति कडवा एवा कष्टोथी तने उपद्रव थाय नहीं ॥ १८ ॥

१३ शरीरना मोह विषे

आ स्वार्थी शरीरना कामने माटे सकल्प-विकल्पो करी आत्माने खेद आपवो न जोइए

हहो मानस ! कथ्यता मम पुर पृच्छामि सप्रश्रय
रे निर्लक्षण ! शिक्षिता कुत इय नि सीमनिर्लज्जता ?।
अस्य स्वार्थपरायणस्य वपुष कृत्येषु मूढादरा
दात्माय सहजोऽपि निर्दय ! यत' खे[illegible]।
मङ्कल्प्यते ॥ १९ ।

हे लक्षण रहित मन ! हु तने नम्रता साथे पूछु छु के आवी बेहद निर्लज्जता तु क्याथी शीख्यु ? हे मने कहे हे मूढ ! हे निर्दय ! जे स्वार्थमा तत्पर एव शरीरना कार्योमा आदर राखी तु तारा सहज आत्माने सकल्प-विकल्पोथी खेद पमाडे छे ॥ १९ ॥

---

१ स्वाभाविकोऽपि ।

१४ विषयोना कटुफल विषे

विषयोमा सुखनु अभिमान न राखवु जोइए.

भूयो भूयोऽपि रे रे गतभय! भ्रमता भ्राम्यता भीमभीमे
सारेऽस्मिन् विषोढा. कति कथय महावेदनाः कर्मदोषात्?
ानानोऽप्येतदेव प्रतिदिवममहो तन्निदानेषु कस्मा-
ात्मन्नेकान्तमूढ. कलयसि विषयेष्वेव सौख्याभिमानम्२०

हे निर्भय आत्मन्! कर्मना दोषथी आ अति-
भयकर ससारमा वारवार भमीने तें वेटली महावेदनाओ
सहन करी? ते कहे ए मोटी वेदनाओनु कारण
विषयो छे ए वात तारा जाणवामा छे, छता तु अति-
मूढ थइने हमेशा ते विषयोमा सुखनु अभिमान शामाटे
राखे छे? ॥ २० ॥

जो चित्तने विषयोमाथी अटकावमा आवे तो सर्व सुख हाथमा ज छे

अभ्यस्तैः किमु पुस्तकैः किमथवा चेष्टाभिरेकान्ततः
कष्टाभिः किमु दैवतादिविषयैः पूजाप्रणामादिभिः ।
चेतश्चेदिदमर्कतूलतरलं शक्येत रोद्धुं बलात्
कामेभ्यः करपङ्कजे ननु तदा सौख्यानि सर्वाण्यपि ॥

हे भव्य ! तारे घणा पुस्तकोनो अभ्यास करवा कांइ जरुर नथी, एकांतपणे कष्टकारी तपस्या चेष्टाओ करवानी पण जरुर नथी अने देवता वगेरे पूजा तथा प्रणामादि करवानी पण जरुर नथी जो आ डाना रुना जेवा चचळ चित्तने विषयोमाथी बलात्क अटकाववानी तारामा शक्ति होय तो पछी सर्वे सुख तारा हाथमा ज छे, एम समजी लेजे ॥ ७१ ॥